© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

गुण तथा अलङ्कार में वैषम्य

सत्येन्द्र कुमार सिंह
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

साहित्यशास्त्रीय परम्परा के अंकुरण काल से ही गुण तथा अलङ्कारों का निरूपण काव्य के नियामक तत्त्व के रूपमें किया गया है। गुण तथा अलङ्कार किस तरह से किसी वाक्य रचना में काव्यत्व की सृष्टि करते है? इस प्रश्न का निराकरण आचार्यों ने अपनी–अपनी मेधा से किया है। गुण तथा अलङ्कार दोनो ही काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्व है परन्तु किस रूपमें वे काव्य–सौन्दर्याधायक होते है इस प्रश्न पर विद्वत् जन एक मत नहीं है। कुछ आचार्य गुण तथा अलङ्कार की समष्टि को काव्य सौन्दर्य का उत्पादक मानते है जबकि अन्य गुण को काव्य अनिवार्य धर्म मानते हुए काव्य सौन्दर्य का उत्पादक माना है तथा अलङ्कार को काव्य अस्थिर धर्म स्वीकार करते हुए अतिशयता का संचार करने वाले तत्त्व के रूपमें मान्यता दी है। प्रस्तुत शोध पत्र लिखने का उद्देश्य इस तथ्य का उद्घाटन करना है कि वास्तव में गुण तथा अलङ्कार में भेद है कि नहीं, अगर है तो क्या है?

शास्त्रीय दृष्टि से गुण तथा अलङ्कारों का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। इन्होंने दश गुणों तथा चार अलङ्कारों का निरूपण किया है[1] परन्तु इन्होंने गुणों को सर्वथा स्पष्ट नही किया है। गुणों को आचार्य भरत ने अभावात्मक तत्त्व माना है। इनकी दृष्टि में दोषो की सत्ता का अभाव ही गुण है जो रसाधीन होते है।[2] आचार्य भरत गुण तथा अलङ्कार दोनो को काव्य का भूषण या विभूषण स्वीकार किया है।

आचार्य भामह काव्य में अलङ्कारों को गुण की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हुए उन्हे सौन्दर्य प्रतीति का साधन माना है–

नकान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।।[3]

इन्होंने काव्य में तीन गुणों की सत्ता स्वीकार की है जो वस्तुतः पद रचना पर आधारित होते है। इनकी दृष्टि में अलङ्कार काव्य का आत्मिक तत्त्व है जबकि गुण स्थूल तत्त्व है।

आचार्य दण्डी ने दश काव्य गुणों का निरूपण किया है परन्तु इन्होंने गुणों का सामान्य लक्षण नहीं किया है जबकि अलङ्कारों का विशद विवेचन किया है। इन्होंने काव्य शोभा के सम्पादक सभी तत्त्वों को अलङ्कार संज्ञा से अभिहित किया है–

काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कार प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्र्थेन वक्ष्यपि।[4]
काश्चिन्मार्ग विभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलंक्रिया।
साधारणमलंकार जातमन्यत् प्रदर्श्यते।।[5]

अर्थात् काव्य शोभाकर सभी धर्मों को अलङ्कार कहते है। जिस प्रकार से लावण्यादि गुणों से युक्त शरीर को हारादि सुशोभित करते है, उसी प्रकार से गुणयुक्त काव्यों को अनुप्रासादि अलङ्कार सौन्दर्यातिशय बनाते है। आचार्य दण्डी ने काव्य के अन्यान्य सभी काव्य तत्त्वों को अलङ्कार रूपमें माना है, उनका मंतव्य है कि इन सभी काव्य तत्त्वों से काव्य चमत्कार में वृद्धि होती है, अतः ये सभी तत्त्व अलङ्कारत्व की कोटि में आते है। गुण भी अलङ्कार की भाँति साक्षात रूप से काव्य के उपकारक होते है न कि रस के माध्यम से। दण्डी गुण तथा अलङ्कार में कोई तात्विक भेद नहीं स्वीकार किया है।

दण्डी के पश्चात् गुणालङ्कार का विवेचन करने वाले प्रमुख आचार्य है उद्भट। इन्होंने काव्य में गुण तथा अलङ्कार दोनो की अनिवार्य सत्ता स्वीकार करते हुए उनमें अभेद की कल्पनाकिया है। उनका दृष्टिकोण था कि काव्य में गुण तथा अलङ्कार दोनो ही समवाय सम्बन्ध से विद्यमान रहते है, उनमें भेद की कल्पना की ही नहीं जा सकती है–

समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादयः गुणालङ्काराणां भेदः, ओजप्रभृतीनाम् अनुप्रासोपमादीनाम् चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गुडुलिका प्रवोणैवैषां भेदः।[6]

साहित्यशास्त्रीय परम्परा में आचार्य वामन के पूववर्ती आचार्यों ने गुण तथा अलङ्कारों का पृथक निर्देश तो किया है परन्तु दोनों में भेद के तात्त्विक कारणों को स्पष्ट नहीं किया था। आचार्य वामन ने इस विषय पर सर्वप्रथम लेखनी चलाते हुए इस तथ्य को स्पष्ट किया है। उनकी धारणा थी कि "काव्य शोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।"[7] अर्थात् गुण काव्य

शोभा के विधायक या उत्पादक धर्म है जबकि अलङ्कार काव्य सौन्दर्यवर्धक तत्त्व है। हम इस प्रकार से भी कह सकते है कि गुण वे काव्यतत्त्व है जिससे काव्यानन्द की सृष्टि होती है और अलङ्कार उसको और अधिक रमणीय बना देता है। वे कहते है कि–

युवतेरिवरूपमङ्ग काव्यं, स्वदते शुद्धगणं तदप्यतीव।
विहित प्रणायं निरन्तराभिः,सदलङ्कारविकल्प कल्पनाभि।।
यदि भवति वचश्च्युतं गुणेभ्यो, वपुरिव यौवन वन्ध्यमङ्गनायाः।
अपि जनदियतानि दुर्भगत्वं, नियतमलङ्करणानि संश्रयन्ते।।[8]

आचार्य वामन की अवधारणा का अनुशीलन करने पर हमें निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते है–

1. गुण तथा अलङ्कार शब्द और अर्थ के धर्म है।
2. गुण काव्य का शोभाधायक तत्त्व है जबकि अलङ्कार सौन्दर्य वर्धक तत्त्व है।
3. गुण काव्य के काव्यत्व के लिए अनिवार्य तत्त्व है जबकि अलङ्कारों की काव्य में अनिवार्य सत्ता नही होती है।

ध्वनि सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य आनन्दवर्धन ने गुण तथा अलङ्कार वैषम्य को नवीन दृष्टि से व्याख्यायित किया है। इन्होंने लिखा है –

तमर्थमवलम्बते येऽङ्गनं ते गुणा स्मृताः।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मत्तव्याः काटकादिवत्।।[9]

जो प्रधानीभूत (रस) अङ्गी के आश्रित रहते वाले (माधुर्यादि) है उनको गुण कहते है और जो उसके अङ्ग के आश्रित रहते है उनको अलङ्कार कहते है। उनकी दृष्टि में अलङ्कार काव्य की बाह्य शोभा को निरुपित करते है तथा काव्य में अलङ्कारों का नियोजन रस के अनुसार किया जाना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन के मत का सार है–

1. गुण शौर्यादि की भाँति काव्य का नित्य धर्म है जबकि अलङ्कार हारादि की भाँति अनित्य धर्म है।
2. गुण रस के धर्म है जबकि अलङ्कार शब्दार्थ के धर्म है।
3. गुण रस को प्रत्येक परिस्थिति में उपकृत करता है जबकि अलङ्कार सर्वदा रसोत्कर्षक नहीं होता है।

आचार्य मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यो के मतों की समीक्षा करते हुए गुण तथा अलङ्कारों में भेद की कल्पना की है। मम्मट गुण तथा अलङ्कार को स्पष्ट करते हुए उनके भेदक तत्त्वों को भी स्पष्ट किया है। उनकी दृष्टि में–

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युचलस्थितयो गुणाः।।
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[10]

अर्थात् गुण शौर्यादि की भाँति काव्यात्मा रस के अपरिहार्य तथा उत्कर्षाधायक तत्त्व है जबकि अलङ्कार वे तत्त्व है जो काव्य के अङ्गभूत शब्दार्थ के माध्यम से कभी–कभी रस को उपकृत करता है। आचार्य मम्मट एक समन्वयवादी आचार्य है, इनका गुणालङ्कार सम्बन्धि विवेचन वामन तथा आनन्दवर्धनके मतों का सार है। इन्होंने वामन से गुणों की अपरिहार्यता तथा आानन्दवर्धन से गुण की रसधर्मिता को स्वीकार किया है। मम्मट ने अलङ्कारों को रसानुगत रूपमें मान्यता दी है। उन्होंने काव्य में अलङ्कारों की तीन प्रकार से सत्ता स्वीकार की है –

1. कभी अलङ्कार शब्द तथा अर्थ रूप अङ्गों के द्वारा विद्यमान रस का उत्कर्षधाय होता है।
2. रसाभाव वाले स्थलों पर ये उक्ति वैचित्र्यमात्र प्रतीत होते है।
3. कभी रस के होने पर भी उसके उत्कर्षाधारक नही होते है।[11]

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट का अनुसरण करते हुए काव्य के सारभूत /आत्म भूत रस तत्त्व के धर्म रूपमें गुणों की सत्ता स्वीकार किया है तथा अलङ्कार शब्द तथा अर्थ का अस्थिर धर्म होते हुए भी शब्दार्थ के माध्यम से रस को अभिव्यञ्जित करते है–

रसस्याङ्गित्मातस्यधर्मा शौर्यादयो यथा। गुणाः–[12]
शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[13]

पण्डितराज जगन्नाथ ने गुण को केवल रस का धर्म स्वीकार करने से इनकार कर रस को गुण का प्रयोजक मानने के साथ शब्द, अर्थ तथा रचना को भी गुणों का प्रयोजक माना

है।[14]उनका विचार है कि लौकिक उदाहरणों से इसका अनुमान लगाया जा सकता कि गुण रस, शब्दार्थ की प्रयोजकता में रहता है। यथा–रस मधुर है, शब्द मधुर है, रचना मधुर है और जो बात साक्षातरूप से सिद्ध है उसे उपचारतः सिद्ध करना उचित नहीं है। पण्डितराज ने रमणीयता के प्रयोजक धर्म को अलङ्कार माना है जो वस्तुतः शब्द तथा अर्थ में रहते है, इन्होंनेअलङ्कार की प्रधानता वाले स्थलों में अलङ्कार को अलङ्कार्य रूपमें स्वीकार किया है।

काव्यालोककार हरिप्रसाद ने भी गुण तथा अलङ्कार में भेद स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में गुण आह्लादरूपी धर्मी का धर्म है जो शब्द, अर्थ, रस तथा रचना में रहता है तथा अलङ्कार शब्द तथा अर्थ के आश्रय में रहता हुआ आह्लाद की सृष्टि करता है।[15] हरिप्रसाद के मत कर सार प्रस्तुत है–

1. गुण शब्द, अर्थ, रस तथा रचना के आश्रय में रहता है जबकि अलङ्कार शब्द तथा अर्थ में रहता है।
2. गुण काव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता है जबकि अलङ्कार संयोग सम्बन्ध से रहता है।
3. गुण काव्य के विशेषाधायक तत्त्व है जबकि अलङ्कार अह्लाद का कारण है।

काव्य में गुण तथा अलङ्कार दोनो ही काव्य तत्त्वों की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। ये दोनो ही तत्त्व काव्य में चार चाँद लगा देते है। वस्तुतः जहाँ तक गुण तथा अलङ्कार के भेदक तत्त्वों की बात आती है तो उसमें हम सर्वप्रथम रस की गणना करते है उसके बाद शब्द तथा अर्थ की। इसके साथ ही गुण तथा अलङ्कार भिन्न प्रकार के सम्बन्ध से काव्य में विद्यमान रहते है। उपर्युक्त भेदक तत्त्वों की सत्ता होने पर भी गुण तथा अलङ्कार में एक उत्कृष्ट कोटि की समानता है और वह है काव्यानन्द/चमत्कार प्रतीति को सहज बनाना।

सन्दर्भ सूची–

1. नाट्यशास्त्र 16–43 एवं 16–97
2. नाट्यशास्त्र 17–6. जी. ओ. एस. भाग–2
3. काव्यालङ्कार 1,13
4. काव्यादर्श 2,1
5. काव्यादर्श 2,3

6. काव्यप्रकाश पृ० 378

7. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 3,1,1

8. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति पृ० 116

9. ध्वन्यालोक 2,6

10. काव्य प्रकाश पृ० 380, 381

11. यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः।
क्वचिन्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति। वही पृ० 381

12. साहित्यदर्पण पृ० 642

13. वही 10/1 पृ० 665

14. रसगङ्गाधर पृ० 220–224

15. शब्दार्थरसरचनागतत्वेन काव्यधर्मत्वं गुणत्वम्। काव्यालोक सूक्त 97 वृत्ति

——